२६८१

जून १९८३
वर्ष ७ : अंक २

निश्चय

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON Telephone : 22-4110 22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ७ : अंक २

जून १९८३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र [illegible]

कलकत्ता-[illegible]

सूची

बिहार सीमान्त की
प्राचीनतम् सराक संस्कृति ३७

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ४२

अर्द्धकथानक ५२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ६१

दामोदर के तट पर निर्मित हुआ था
प्राचीन सराक संस्कृति का एक विराट केन्द्र स्थल

माँचा टाँड में प्राप्त कुछ प्राचीन शिल्प कला के निदर्शन

बिहार सीमान्त की प्राचीनतम् सराक संस्कृति

श्री युधिष्ठिर माजी

काले पाषाण के अन्धकारमय घर से निकल कर जहाँ दामोदर नद की तन्द्रा टूटती है, जहाँ दामोदर सख्त पाषाण शय्या को छोड़कर कोमल मिट्टी के सन्धान में आगे जाने का उपक्रम करता है, उसी स्थान का नाम है सात खाटिया। प्रचण्ड जल स्रोत से टकरा-टकरा कर यहाँ के पाषाणों ने अपनी-अपनी इच्छानुसार विभिन्न आकृतियाँ धारण कर ली हैं। स्वआनन्द में उन्मत्त एक झरना—दामोदर में मिलने के लिए राह में बाधक पाषाणों को तोड़ता हुआ एक गहन गड्ढे में जा गिरता है। सात खाटों की रस्सियाँ खोलकर उसमें डालने पर भी पाषाणों के इस गड्ढे के अन्धकारमय राज्य की शेष सीमा का अन्त नहीं पाया जा सकता। अतः इस स्थान का नाम हो गया सात खाटिया। यह बेलुड़जा से तीन मील दूर है।

प्रकृति के इस लीला क्षेत्र के निकट ही निर्मित हुआ था प्राचीन सराक संस्कृति का एक विराट केन्द्र स्थल। वर्तमान में इस पुराक्षेत्र को बहुत से लोग 'माँचा टाँड' कहते हैं। फिर देवालय संलग्न दामोदर के घाट के कारण बहुत इसे देउलघाटिया कहने लगे। प्रसंगवश बता रहा हूँ कंसावती के तीरवर्त्ती अंचल वोड़ाम के पुराक्षेत्र को भी देउलघाटा कहा जाता है।

बिहार सीमान्त के दामोदर तट पर स्थित इस माँचा टाँड में अभी एक पाषाण मन्दिर का भग्नावशेष है। कुछ दिन पूर्व सामान्य से खनन कार्य के फलस्वरूप बहुत से शिलाखण्ड मिले हैं। यहाँ बड़े रूप में यदि खुदाई कार्य किया जाए तो और भी बहुत से मूल्यवान अतीत इतिहास के निदर्शन मिल सकते हैं। वर्तमान में जो बहुमूल्य शिलाखण्ड मिले हैं उनपर अंकित है ध्यान-मग्न तीर्थंकर मूर्त्तियाँ, यक्षिणी मूर्त्तियाँ एवं धरणेन्द्र-पद्मावती की मूर्तियाँ। इसके अतिरिक्त हैं टूटे-फूटे पद्मासन, आम्रपल्लव और नारियल युक्त मंगल कलश। और भी असाधारण भास्कर्य शिल्प के निदर्शन स्वरूप बहुत से शिलाखण्ड यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। यहाँ का मंगल कलश पाक विड़रा में प्राप्त मंगल कलश-सा गोलाकार नहीं है, डिम्बाकृति है।

यहाँ के शिलाखण्ड पाक विड़रा की शिल्पकला के शिलाखण्ड-से उत्कृष्ट नहीं हैं। सम्भवतः दामोदर तटवर्त्ती अंचलों में प्राप्य बादामी बलुई पत्थरों से इन शिल्पों का निर्माण हुआ है।

यहाँ कुछ तीर्थंकर मूर्त्तियाँ अक्षत अवस्था में मिली थीं। वर्तमान में वे सब पटना म्यूजियम में भेजी गयी हैं।

यहाँ के बहुत से लोगों ने कहा—इन भग्नावशेषों में एक सुवर्ण मूर्त्ति और सुवर्ण सिंहासन भी मिला था किन्तु वे अब कहाँ गए यह कोई नहीं जानता। बेलुञ्जा के जमीन्दार घर के लोगों ने भी इस स्वर्ण मूर्त्ति की बात स्वीकार की। किन्तु वर्तमान में वह कहाँ है यह बता न सके। कुछ वर्ष पूर्व यहाँ एक बहुत बड़ा मेला लगता था। अतः इस स्थान के समीप श्याम नगर नामक एक रेलवे स्टेशन की योजना बनायी गयी। किन्तु बाद में मेला उठ जाने के कारण स्टेशन की प्रयोजनीयता भी समाप्त हो गयी थी।

सात खाटिया के समीप दामोदर तट पर इस माँचा टाँड में आज भी भग्न तीर्थंकर मूर्त्तियों की छाया दामोदर की जल में प्रतिबिम्बित होती रहती है। किशोर दामोदर की लहरें एक चट्टान से दूसरी चट्टानों पर छलांगे भरती रहती है। उनकी अविरल छलांगों से कठोर शिलाखण्ड भी क्षय हो जाते हैं। किन्तु विलुप्त नहीं हो पाती अहिंसा धर्म के साधक तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ। सराक संस्कृति की अन्तिम प्रदीप शिखा आज भी यहाँ की पुण्यमय धरती में निर्वापित नहीं हुई है।

सराक संस्कृति के अतीत से जुड़ी विभिन्न शिलाखण्डों को लेकर विभिन्न किंम्बदन्तियाँ परवर्त्ती काल में रची गयीं। मन्दिर के समीप ही एक विराट शिलाखण्ड शिव रूप में पूजा जाता है। कहा जाता है कभी एक गाय इस शिला के ऊपर स्वेच्छा से आकर दूध बरसा जाती। उस शिला से प्रवाहित होता वह दूध मिल जाता दामोदर के जल में। इस दुग्ध धारा का दाग आज भी उस शिलाखण्ड पर दिखलाई पड़ता है।

धनबाद जिला का यह माँचा टाँड और सात खाटिया आज भी मनुष्य को हाथ से संकेत कर बुला रहा है। मन को मुग्ध कर देने वाले यहाँ के प्राकृतिक दृश्य में आज भी मानव मन खो-सा जाता है। अतः शीतकाल में बहुत से लोग यहाँ वनभोज करने आते हैं। रास्ता ठीक रहने पर बाहर के भी अनेक लोग सात खाटिया के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अतीत की सराक संस्कृति जड़ित इस पुण्य भूमि पर आते थे।

इस अंचल का द्वितीय पुराक्षेत्र है बेलुञ्जा के समीप चेंचका में। यह स्थान कतरास से करीब आठ मील दूर अवस्थित है। चेंचका का प्राचीन नाम चेंचगाँवगढ़ है। यहाँ सराक संस्कृति युक्त एक विराट पुराक्षेत्र है। यह पुराक्षेत्र भी दामोदर के तटवर्त्ती अंचल में ही स्थित है।

चेंचगाँवगढ़ में किसी समय सोलह मन्दिर थे। वर्तमान में

मन्दिरों के ध्वंशावशेष से प्राप्त कुछ टूटे-फूटे शिलाखण्ड अवहेलना और अनादर के कारण क्षय हो रहे हैं। इन सब टूटे-फूटे शिलाखण्डों की पर्यालोचना करने पर पाते हैं कि अतीत की सराक संस्कृति के वक्ष पर परवर्ती काल में हिन्दू ब्राह्मण संस्कृति का विकास किया गया था।

मन्दिर के ध्वंशावशेष करीब एक मील लम्बे और आधा मील चौड़े अंचल के मध्य बिखरे पड़े हैं। यहाँ की प्राचीन शिल्प कला में यक्षिणियों की मूर्त्तियाँ, गणेश मूर्त्ति, विष्णु मूर्त्ति एवं मस्तक कटे एक विराट सांड का सन्धान मिला है। सांड प्रायः तीन फुट लम्बा है। माथा रहने पर करीब पाँच फुट होता। विष्णु मूर्त्ति भग्न हो गयी है। यह विष्णु मूर्त्ति जिस शैली में निर्मित है वैसी ही शैली में निर्मित विष्णु मूर्त्ति तेलकूपी में भी मिली है। फिर भी चेंचगाँवगढ़ की इस मूर्त्ति के दोनों पार्श्व में लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्त्ति नहीं है। यह विष्णु मूर्त्ति, वर्त्तमान में काली के रूप में पूजी जाती है। अतः मूर्त्ति की भग्न देह पर सिन्दूर फैला हुआ मिलता है।

चेंचगाँवगढ़ में एक शिलालिपि भी है। दामोदर की एक छोटी शाखा नदी के एक विराट शिलाखण्ड पर उत्कीर्ण की गयी है वह शिला लिपि। मात्र दो पंक्तियों में एक श्लोक इस पर लिखा हुआ है। दो कारण से लिपि पढ़ना बहुत कठिन कार्य है। प्रथमतः पहली पंक्ति बहुत कुछ अस्पष्ट हो गयी है। द्वितीयतः अक्षर भी बहुत छोटे हैं। जिस विराट शिलाखण्ड पर यह शिलालिपि है उसी पर दो पद चिन्ह भी हैं।

ये पद चिह्न बहुत बड़े हैं। यदि ये पद चिह्न सचमुच किसी मनुष्य के पद चिह्न हैं तब तो वह मनुष्य अवश्य ही दीर्घदेही साधक पुरुष था। इसके अतिरिक्त इसी शिलाखण्ड पर कई छोटे शिवलिंग खोदने की चेष्ट भी की गई है।

सम्भवतः यहाँ की सराक संस्कृति के पतन के पश्चात् ब्राह्मण संस्कृति के विकास युग में ये सब कार्य किए गए हैं। अवश्य ही शिलालिपि पढ़ना सम्भव होने पर इस प्रसंग पर कुछ कहा जा सकता।

विगत शताब्दी में मिस्टर जी० डी० वेगलर ने इस स्थान का निरीक्षण किया था।

मिस्टर वेगलर ने यहाँ के सोलहों मन्दिरों को टूटी-फूटी अवस्था में देखा था। मन्दिरों की भास्कर्य शिल्प कला पद्धति को देखकर वे एक बारगी

मुग्ध हो गए थे। उनके मत में यहाँ की मूर्त्ति कला के साथ उदयपुर अंचल की शिल्प कला का साम्य है। किन्तु अब तो एक भी मन्दिर की भास्कर्य शिल्प कला के निरीक्षण योग्य शिलाखण्ड अवशिष्ट नहीं है। यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि मात्र सौ वर्षों की अवधि में ही यहाँ के अमूल्य शिल्प कला के निदर्शन लुप्त प्रायः हो गए।

यहाँ से प्रायः दो मील दूर है झिंझि पहाड़ी। आगे शायद यहाँ चैत्र मास में एक विराट गाजन मेला लगता था। किन्तु वर्तमान में घान क्षेत्रों के मध्य एक ऊँचे स्थान पर एक बड़ा शिलाखण्ड झिंझि पहाड़ी की स्मृति को वहन किए है। खो गया है झिंझि पहाड़ी का मन्दिर, खो गया है यहाँ का मेला। आज अतीत की ये सब बातें मानव मन में कहीं नहीं है। झिंझि पहाड़ी के वक्ष पर जो वृहद् शिलाखण्ड पड़ा हुआ है वह हरे रंग का एक उन्नत जाति का शिलाखण्ड है। लगता है इन्हीं शिलाखण्डों को काटकर माँचा टाँड के भास्कर्य शिल्प निर्मित हुए थे। इसी जाति के शिलाखण्डों द्वारा निर्मित कुछ शिल्प कलाएँ टूटी-फूटी अवस्था में माँचा टाँड के ध्वंशावशेषों में मिली हैं।

बेलुञ्जा के शिव मन्दिर के पास अवहेलित एवं अनादृत अवस्था में पड़ा है बलुई बादामी पाषाण द्वारा निर्मित एक तीर्थंकर मूर्त्ति का भग्नावशेष। इस अंचल में बलुई बादामी पत्थर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। ये पत्थर खूब अच्छी किस्म के नहीं होने से इनकी शिल्पकलाएँ दीर्घस्थायी नहीं होतीं। सोचने पर आश्चर्य होता है कि जिन सराक शिल्पियों ने पाक विड़रा में अति उत्तम पाषाणों से बने अविस्मरणीय भास्कर्य शिल्प निदर्शनों को छोड़ा है उन्होंने इस प्रकार के नर्म पाषाणों से यहाँ की भास्कर्य शिल्प कलाओं को क्यों निर्मित किया! फिर यहाँ की शिल्पकलाओं की उत्कृष्टता भी पाक विड़रा की शिल्पकलाओं-सी नहीं है। क्यों? शायद पाक विड़रा की संस्कृति के परवर्त्ती काल में बेलुञ्जा अंचल में चेंचगाँवगढ़ की शिल्प कलाएँ निर्मित हुई हैं। फिर यहाँ की सराक संस्कृति भी दीर्घ स्थायी नहीं हुई। सप्तम शताब्दी के पूर्व ही ब्राह्मण संस्कृति का प्रभाव वहाँ फैल गया था।

सम्भवतः चेंचगाँवगढ़ की संस्कृति तेलकूपी की सराक संस्कृति के समसामयिक थी। यहाँ की विष्णुमूर्त्ति इसका ज्वलन्त प्रमाण है। तेलकूपी की मिश्र संस्कृति के उत्थान-पतन के साथ चेंचगाँवगढ़ के भाग्य को एक ही सूत्र में गूँथ दिया गया है।

यहाँ के लुप्तप्रायः प्राचीन सराक संस्कृति के टूटे-फूटे शिलाखण्डों की भाँति किसी प्रकार आज भी टिके हुए हैं सराक संस्कृति के मनुष्य। पर्वतपुर,

बेलुञ्जा, वेलहुट, कुमारडूबी, देवग्राम, मदाल आदि ग्रामों में आज भी बहुत से सराक सम्प्रदाय के मनुष्य रहते हैं। वेलहुट में जैन धर्म से युक्त एक पाठ-शाला में अध्यापन करते थे 'तीर्थंकर गीतावली' के रचयिता श्री युक्त हरिश्चन्द्र सराक। सराक सम्प्रदाय के एक मात्र कवि हरिश्चन्द्र ने रघुनाथपुर के समीप नूतन डी ग्राम में जन्म लिया था। उन्होंने अपना सारा जीवन ही धर्म और शिक्षा के प्रचार में व्यतीत किया था। उनके द्वितीय ग्रन्थ का नाम था श्रावकाचार। कवि हरिश्चन्द्र के बचपन का नाम था हरि माजी। पिता का नाम था श्रीनाथ माजी और माँ का नाम था लक्ष्मी माजी। वर्तमान में उनके भाई नीलकण्ठ माजी की एक कन्या बिबिवाला मौजूद है।

सराक संस्कृति से जुड़े अतीत के पुराक्षेत्रों की पर्यालोचना करने पर एक विशेष तथ्य हमारे सम्मुख उभरता है—वह है छोटा नागपुर अंचल के समस्त पुराक्षेत्रों का दामोदर एवं कंसावती नदी के तटवर्ती अंचलों पर अवस्थित होना। यहाँ की दामोदर एवं कंसावती ने माला की भाँति गूँथ रखा है समस्त पुराक्षेत्रों को। दामोदर ने गूँथा है माँच टाँड, चेंचगाँवगढ़, छड़रा, पाड़ा और तेलकूपी को, कंसावती ने वोड़ाम (देउलघाटा), पलमा, बुधपुर, पाकविड़रा आदि पुराक्षेत्र को। अतः कहा जा सकता है प्राचीन सराक संस्कृति थी अधिकांशतः नदी मातृक। दामोदर एवं कंसावती की पुण्य धाराओं ने अतीत के सराक भास्कर्य शिल्प को संजीवित किया था। दामोदर एवं कंसावती के स्नेह रस में स्निग्ध हुई थी उस समय की अहिंसा धर्म की अमर पुण्य भूमि।

दामोदर एवं कंसावती की मिली-जुली प्रचेष्टा ने सृष्टि की थी छोटा-नागपुर की पुण्य भूमि में अहिंसा धर्म साधना के लीला क्षेत्रों की। अपने रूप रस से आकृष्ट किया था अहिंसा धर्म के महान साधक महावीर को। उसदिन साधना के मन्त्रोच्च र से दामोदर एवं कंसावती की गति अबाध थी। सृजन शक्ति थी सीमाहीन। किन्तु हाय! महाकाल के स्रोत में ध्वंश हो गए हैं उन दिनों के गौरवोज्ज्वल शिल्पकला के निदर्शन। भंग हो गए हैं साधना क्षेत्र। कंकरमय मिट्टी ने ग्रस लिया है अतीत की सभ्यता को। कंसावती और दामोदर आज निःसत्व सर्वहारा होकर अनमनी हो गई हैं। आज उनके प्राणों में आनन्द का गतिवेग नहीं है। दामोदर कंसावती ने मानो आज स्रोत-हारा होकर छोटानागपुर के कंकरमय मिट्टी में अपना मुख छिपा लिया है।

[श्री अजित कुमार सराक, श्री नन्दलाल माहात बिहार सीमान्त में भ्रमण के समय मेरे साथी थे। मैं उनका आभारी हूँ।]

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

अतिथि (साधु) को चतुर्विध आहार, पात्र, वस्त्र और स्थान दान को अतिथिसंविभाग व्रत कहते हैं। (चतुर्विध आहार—(१) असन—अन्नादि भोजन (२) पान—पेय वस्तु (३) खादिम—फल आदि (४) स्वादिम—लवंग, इलायची आदि)।

यति और श्रावकों को मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यक् ऐसे तीन रत्नों की सर्वदा उपासना करनी चाहिए।

ऐसा उपदेश सुनकर उसी समय भरतपुत्र ऋषभसेन ने प्रभु को नमस्कार कर निवेदन किया—हे स्वामी, कषायरूपी दावानल में, इस भयंकर संसार रूपी अरण्य में आप नवीन मेघ की भाँति अद्वितीय तत्वामृत वर्षण कर रहे हैं। समुद्र में निमज्जमान व्यक्ति जैसे समुद्र में पोत प्राप्त करता है, पिपासित जल-सत्र, शीत से व्याकुल अग्नि, आतप-पीड़ित वृक्ष की छाया, अन्धकार-निमग्न दीप, दरिद्र धन, विष-पीड़ित अमृत, रोग-ग्रस्त औषध, शत्रु-पीड़ित दुर्ग का आश्रय उसी प्रकार संसार भय से भयभीत हमने आपको प्राप्त किया है। इसलिए हे दयानिधि, रक्षा करिए! हमारी रक्षा करिए! पिता, भाई, भतीजा और अन्य आत्मीय परिजन संसार भ्रमण के हेतु रूप होने के कारण अहितकारी तुल्य हैं अतः इनसे मुझे क्या प्रयोजन? हे जगत शरण्य, इस संसार समुद्र को उत्तरण करने में सहायकारी आपकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ अतः आप मुझपर प्रसन्न हों और मुझे दीक्षा दें।

इस प्रकार निवेदन कर ऋषभसेन ने भरत के अन्य पाँच सौ पुत्र और सात सौ पौत्र सहित व्रत ग्रहण कर लिया। सुरासुर अभिनन्दित प्रभु के केवल-ज्ञान की महिमा देखकर भरतपुत्र मरीचि ने भी व्रत ग्रहण कर लिया। भरत की आज्ञा मिलने पर ब्राह्मी भी दीक्षित हो गयी। कारण लघुकर्म युक्त जीवों के लिए गुरु का उपदेश प्रायः साक्षीमात्र ही होता है।

बाहुबली की आज्ञा पाकर सुन्दरी भी दीक्षा लेने को उद्यत हो गयी किन्तु भरत के निषेध करने पर वह प्रथम श्राविका बनी। भरत ने भी प्रभु से श्रावक धर्म ग्रहण किए। कारण योग्य कर्मों को भोगे बिना व्रत प्राप्त नहीं होता। मनुष्य तीर्यंच और देवताओं की उसी परिषद में किसी ने साधु व्रत

ग्रहण किया तो किसी ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। उन राज तपस्वियों के मध्य कच्छ और महाकच्छ को छोड़कर अन्य समस्त तापस प्रभु के निकट आकर सहर्ष पुनः दीक्षित हो गए। उसी समय से चतुर्विध संघ की प्रतिष्ठा का नियम प्रवर्त्तित हुआ। उसी चतुर्विध संघ में ऋषभसेन (पुण्डरिक) प्रमुख साधु और ब्राह्मी प्रमुख साध्वी बनीं। भरत प्रमुख श्रावक और सुन्दरी प्रमुख श्राविका हुईं। चतुर्विध संघ की यह व्यवस्था तब से आजतक एक श्रेष्ठ गृहरूप में चलती आ रही है।

उसी समय प्रभु ने गणधर नाम कर्म युक्त ऋषभसेन आदि ८४ लोगों को सद्बुद्धि सम्पन्न साधुओं के समस्त शास्त्र जिनमें समाविष्ट हों ऐसे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य नाम युक्त पवित्र त्रिपदी का उपदेश दिया। उसी त्रिपदी के अनुसार गणधरों ने अनुक्रम से चतुर्दश पूर्व और द्वादशांगी की रचना की। फिर देवताओं द्वारा परिवृत्त इन्द्र, दिव्य सुगन्ध भरे चूर्ण (वासक्षेप) का एक थाल लेकर प्रभु के चरणों के पास खड़े हो गए। भगवान ने खड़े होकर गणधरों पर वासक्षेप निक्षेप किया और सूत्र में, अर्थ में, सूत्रार्थ में, द्रव्य में, गुण-पर्याय में एवं नय में उन्हें अनुज्ञा देकर गण की आज्ञा भी दी। फिर देवता मनुष्य और उनकी स्त्रियों ने दुन्दुभि ध्वनि के साथ उन पर चारों ओर से वासक्षेप निक्षेप किया। मेघवारि को ग्रहण करने वाले वृक्ष की भाँति प्रभु की वाणी ग्रहणकारी समस्त गणधर करबद्ध होकर खड़े हो गए। तत्पश्चात् भगवान ने पूर्व की तरह पूर्वाभिमुख सिंहासन पर बैठकर पुनः हितप्रद धर्मोपदेश दिया। इस प्रकार प्रभुरूपी समुद्र से उत्थित उपदेश रूपी ज्वार से उच्छ्वसित तटरूपी प्रथम प्रहर व्यतीत हुआ।

उस समय छिलके रहित अखण्ड और उज्ज्वल शालि द्वारा प्रस्तुत थाल में रखा हुआ चार प्रस्थ (सेर) बलि समवसरण के पूर्व द्वार से भीतर लाया गया। देवताओं ने उसमें सुगन्ध चूर्ण निक्षेप कर द्विगुण सुगन्धित कर दिया। प्रधान पुरुष उस बलि को वहन कर लाए थे। भरतेश्वर ने उसे तैयार किया था। बलि के आगे दुन्दुभि बज रही थी। दुन्दुभि के घोष से दिशाओं के अग्रभाग प्रतिध्वनित हो रहे थे। बलि के पीछे मंगल गाती हुईं पुर-स्त्रियाँ चल रही थीं मानो प्रभु के प्रभाव से उद्गत पुण्य-समूह इस प्रकार चारों ओर से पुरवासियों के द्वारा परिवृत था। फिर कल्याण रूपी धान बीज की तरह उस बलि को प्रभु के चारों ओर प्रदक्षिणा देकर उछाला गया। मेघ वारि को जिस प्रकार चातक ग्रहण करता है उसी प्रकार आकाश से गिरते हुए उस बलि को देवताओं ने अन्तरीक्ष में ही ग्रहण कर लिया। जमीन पर गिरने पर उसका

अर्द्ध भाग राजा भरत ने लिया और अवशिष्ट को एक ही परिवार के लोग हों इस प्रकार सबों ने बाँट लिया। उस बलि के प्रभाव से पूर्व रोग नष्ट हो जाता और नवीन रोग छः मास तक नहीं होता।

फिर सिंहासन से उठकर प्रभु उत्तर पथ से बाहर आए। कमल के चारों ओर जिस प्रकार भ्रमर गुंजन करता है उसी प्रकार समस्त इन्द्र प्रभु के साथ-साथ चले। रत्नमय और स्वर्णमय वप्र के मध्य भाग में ईशान कोण स्थित देवछन्द पर प्रभु विश्राम लेने के लिए उपवेशित हुए। उसी समय भगवान के मुख्य गणधर ऋषभसेन ने भगवान के पादपीठ पर बैठकर धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया। कारण इससे एक तो प्रभु की क्लान्ति दूर करने का आनन्द मिलता है, दूसरे में शिष्य का गुण प्रकाशित होता है और परस्पर प्रतीति होती है। गणधर उपदेश के ये तीन गुण हैं। जब गणधरों का उपदेश समाप्त हुआ तब सब प्रभु को वन्दना कर अपने-अपने स्थान को लौट गए।

इस प्रकार तीर्थ स्थापित होने के पश्चात् गोमुख नामक जो यक्ष प्रभु के निकट रहता था वह अधिष्ठायक देव बना। उसके चार हाथ थे। दाहिनी ओर के दोनों हाथों में से एक हाथ वरद् मुद्रा में था और दूसरे में अक्षमाला सुशोभित थी। बाईं ओर के दोनों हाथों में बिजोरा और पाश था। उसकी देह का वर्ण स्वर्ण कान्तिमय था और वाहन हस्ती था। इस प्रकार भगवान ऋषभ के तीर्थ में उनके निकट अवस्थानकारिणी प्रतिचक्रा (चक्रेश्वरी) शासन देवी बनी। उसकी कान्ति सुवर्ण की-सी थी, वाहन था गरुड़। उसके दाहिने हाथों में वरद्-मुद्रा, तीर, चक्र और पाश था और बाएँ हाथों में धनुष, बज्र, चक्र और अंकुश था।

फिर नक्षत्रों से घिरे चन्द्र की भांति महर्षियों से परिवृत भगवान अन्यत्र विहार कर गए। राह में चलते समय मानो वृक्ष भक्तिवश उन्हें प्रणाम करते, काँटे अधोमुख हो जाते, पक्षी उनकी प्रदक्षिणा देते। विहार करने के समय ऋतु और वायु उनके अनुकूल आवर्त्तित और प्रवाहित होते। कम से कम एक करोड़ देवता उनके साथ रहते। जन्मान्तर में उत्पन्न कर्म को नाश करते देख भयभीत होकर प्रभु के केश, दाढ़ी और नाखून बढ़ते नहीं। प्रभु जहाँ जाते वहाँ वैर, महामारी, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, दुर्भिक्ष और स्वचक्र-परचक्र का भय नहीं रहता। इस प्रकार विश्व को अलौकिक क्षमता से चकित कर संसार अरण्य में भ्रमणकारी जीवों पर अनुग्रह करने की इच्छा से भगवान नभ वायु की भाँति पृथ्वी पर अप्रतिबद्ध भाव से विचरण करने लगे।

तृतीय सर्ग समाप्त

—चतुर्थ सर्ग—

फिर अतिथि के लिए मनुष्य जिस प्रकार उत्कंठित होता है उसी प्रकार उत्कंठित भरत विनीता नगरी के मध्यमार्ग से होकर आयुधागार में गए। चक्र को देखते ही प्रणाम किया कारण क्षत्रियगण शस्त्र को साक्षात् देवता या परमेश्वर ही समझते हैं। भरत ने रोम हस्तक को हाथ में लेकर चक्र को पोंछा। यद्यपि चक्ररत्न पर धूल नहीं रहती फिर भी भक्तों की यही रीति है। फिर उदित होते सूर्य को जिस प्रकार पूर्व समुद्र स्नान कराता है उसी प्रकार महाराज भरत ने चक्ररत्न को पवित्र जल से स्नान कराया। मुख्य गजपति के पीछे की ओर जिस प्रकार चित्र अंकित रहता है उसी प्रकार उस पर गो-शीर्ष चन्दन की पूज्यता शीर्षक तिलक अंकित किया। फिर साक्षात् विजय लक्ष्मी की तरह पुष्प, गन्ध, वासचूर्ण, वस्त्र और रत्नालंकार से उसका पूजन किया। इसके सम्मुख रजत अक्षत से अष्ट मंगल चित्रित किया और भिन्न-भिन्न मंगल से आठ दिक्लक्ष्मी को आबद्ध कर लिया। उसके निकट पाँच वर्ण के फूलों का उपहार रखकर पृथ्वी को विचित्र वर्णमयी बना दिया। शत्रु के यश की भाँति यत्नपूर्वक चन्दन कर्पूरमय उत्तम धूप जलाया। तदुपरान्त चक्रधारी भरत ने चक्र की तीन प्रदक्षिणा दी। गुरु भावना से सात-आठ कदम पीछे हटकर स्नेहास्पद जैसे नमस्कार करता है उसी प्रकार बायाँ गोंड़ा मोड़कर दाहिना हाथ जमीन पर रखकर चक्र को नमस्कार किया। फिर हर्ष ही ने मानों रूप धारण किया है इस प्रकार पृथ्वीपति भरत ने वहाँ अवस्थित होकर चक्र का अष्टाह्निका उत्सव किया। कारण पूज्य भी जिसकी पूजा करते हैं उसकी पूजा कौन नही करेगा ?

उसी चक्र को दिग्विजय के लिए नियुक्त करने की इच्छा से राजा भरत मंगल स्नान के लिए स्नानागार में गए। आभरण खोलकर स्नान योग्य वस्त्र परिधान कर भरत पूर्वाभिमुखी होकर स्नान सिंहासन पर बैठे। फिर कहाँ मालिश करना कहाँ नहीं करना के जानकार मालिश कलाभिज्ञ ने देववृक्ष के पुष्प के मकरन्द तुल्य सुगन्धित सहस्रपाक तेल महाराज के शरीर पर मालिश किया। मांस में, अस्थि में, चर्म और रोमकूप को सुखदायी चार प्रकार की मालिश, मृदु मध्य और दृढ़ इस प्रकार तीन प्रकार के हस्त लाघव से उन्होंने राजा की देह में अच्छी तरह से की। फिर दर्पण की भाँति स्वच्छ और कान्तिमान उन महीपति के शरीर में उनलोगों ने सूक्ष्म दिव्य चूर्ण का उबटन लेपन किया। उस समय ऊँचे मृणाल के कमल शोभित सुन्दर वापिका की भाँति कुछ पुराङ्गनाएँ स्वर्ण कलश लिए खड़ी हुईं तो कुछ जल ही कलश

का आधार हुआ हो ऐसे रजत कलश लिए। कुछ स्त्रियों ने सुन्दर हाथों में लीलामय नील कमल की भ्रान्ति उत्पन्न कारी इन्द्र नीलमणि का कलश लिए थे तो कुछ सुभ्रू बालाओं ने अपने नखरत्नों की कान्तिरूप जल से अधिक शोभा सम्पन्न दिव्य रत्नमय कुम्भ। ये समस्त पुरांगनाएँ देवतागण जिस प्रकार जिनेन्द्र का स्नान कराते हैं उसी अनुक्रम से सुगंधित और पवित्र जलधारा से धरणीपति को स्नान कराया। स्नान करके राजा ने दिव्य विलेपन किया। दिक् प्रकाशित करने वाले उज्ज्वल वस्त्र पहने। ललाट पर मंगलमय चन्दन का तिलक धारण किया। वह यशरूपी वृक्ष के नवीन अंकुर की भाँति लगने लगा। आकाश जैसे वृहद् तारों के समूह को धारण करता है उसी प्रकार निज यशपुंज के समान उज्ज्वल मुक्ता के आभरण उन्होंने धारण किए। स्वर्ण कलश से जैसे प्रासाद शोभित होता है ऐसे अपनी किरणों से सूर्य को लज्जित करने वाले मुकुट से वे शोभित हुए। लक्ष्मी के निवास रूप कमल को धारण करने वाले पद्म सरोवर में जैसे चूल हिमवन्त पर्वत शोभित होता है उसी प्रकार स्वर्ण कलशयुक्त श्वेत छत्र से वे सुशोभित हुए। सर्वदा निकट रहने वाले प्रतिहार की भाँति सोलह हजार यक्ष भक्त होकर उनके आस-पास एकत्रित हुए। फिर इन्द्र जिस प्रकार ऐरावत पर आरोहण करता है उसी प्रकार उच्च कुम्भस्थल के शिखर से दिक्रूपी मुख को आवृत कारी रत्न कुंजर नामक हस्ती पर वे आरोहित हुए। उसी समय उत्कट मद धारा से द्वितीय मेघ के सदृश उस उत्तम जातीय हस्ती ने गंभीर गर्जन किया। मानों आकाश को पल्लवित कर रहे हैं इस प्रकार दोनों हाथ उठाकर चारणगण एक साथ जय-जय ध्वनि करने लगे। जिस प्रकार वाचाल गायक अन्य गाने वालों को गाना गाने के लिए बाध्य करता है उसी प्रकार दुन्दुभि के उच्च स्वर ने दिक् समूह को शब्दायमान करने को विवश किया। अन्य सैनिकों को पुकारने वाले दूत रूप अन्य मंगलमय श्रेष्ठ वाद्य बजने लगे। धूमायमान पर्वत की भाँति सिन्दूर धारणकारी हस्ती यूथ से, विभिन्न रूप धारण किए रेवन्त अश्व सदृश अश्व से, स्व मनोरथ की भाँति विशाल-विशाल रथ से और सिंह को वश में करने वाले पराक्रमी पदातिक सैन्य से अलंकृत महाराज भरतेश्वर ने मानों सैनिकों की पद धूलि से दिक् समूह को वस्त्रावृत कर पूर्व दिशा में प्रयाण किया।

उस समय आकाशचारी सहस्रमाली सूर्यबिम्ब की भाँति हजार यक्षों से सेवित चक्ररत्न सेना के अग्रभाग में चलने लगा। दण्डरत्न धारणकारी सुषेण नामक सेनापतिरत्न अश्वरत्न पर आरोहण कर चक्र की भाँति आगे-आगे चला। शान्ति करने की विधि से शान्तिमन्त्र तुल्य पुरोहितरत्न राजा के

साथ-साथ चले। चलती हुई अन्नशाला की भाँति सैनिकों के लिए विश्राम-स्थल में उत्तम भोजन प्रस्तुत करने में समर्थ ऐसे गृहपतिरत्न, विश्वकर्मा की भाँति शीघ्र स्कन्धावार बनाने में समर्थ वर्द्धकीरत्न और चक्रवर्ती के स्कन्धावार के समान विस्तृत होने में समर्थशाली चर्मरत्न और छत्ररत्न महाराज के संग चले। अपनी ज्योति से सूर्य चन्द्र की भाँति अन्धकार नष्ट करने में समर्थ ऐसी मणि और कांकणी नामक दो रत्न भी चले। सुरासुरों के श्रेष्ठ अस्त्रों के सार से निर्मित हों ऐसे उज्ज्वल खड्गरत्न नरपति के साथ चला।

सेना सहित भरतेश्वर प्रतिहार की तरह चक्र के पीछे चलने लगे। उसी समय ज्योतिषियों के मतानुकूल पवन और अनुकूल शकुन सब प्रकार की दिग्विजय की सूचना देने लगे। कृषक जिस प्रकार लांगल से भूमि समतल करता है उसी प्रकार अग्रगामी सुषेण सेनापति दण्डरत्न से पृथ्वी को समान करते हुए चले। सैन्य गमन से उड़ती हुई रज से मलिन बना आकाश रथ और अस्त्रों पर उड्डीयमान पताका रूपी बलाका से सुशोभित हो रहा था। जिसका अन्तिम भाग दिखायी नहीं पड़े ऐसी चक्रवर्ती की सेनावाहिनी निरन्तर प्रवाहित द्वितीय गंगा सी लग रही थी। दिग्विजय के उत्सव के लिए रथ चित्कार शब्द से, अश्व ह्रेश्वारव से, हाथी बृहतिनाद से परस्पर शीघ्रता कर रहे थे। यद्यपि सेना चलने के कारण धूल उड़ रही थी फिर भी अश्वारोहियों के बल्लमों के अग्रभाग झलझल कर रहे थे। वे मानों आवृत सूर्य किरणों का उपहास कर रहे हों। सामानिक देवताओं के द्वारा परिवृत इन्द्र की भाँति मुकुटधारी और वशंवद राजन्य परिवृत राजकुंजर भरत मध्य भाग में शोभित हो रहे थे।

प्रथम दिन एक योजन पथ अतिक्रम कर चक्र रुक गया। उस दिन से योजन का परिमाण हुआ। रोज एक-एक योजन पथ अतिक्रम कर राजा भरत कुछ दिनों पश्चात् गंगा के दक्षिण तट के निकट आ पहुँचे। गंगा की विस्तृत तट भूमि को भी सेना के लिए पृथक-पृथक छावनियों से संकुचित कर वहाँ विश्राम किया। उस समय गंगा की तट भूमि वर्षाकालीन तट भूमि की तरह हस्तियों के झरते हुए मदजल से पंकिल हो गयी। मेघ से समुद्र जैसे जल ग्रहण करता है उसी प्रकार गंगा के निर्मल प्रवाह से उत्तम हस्ती इच्छापूर्वक जल ग्रहण करने लगे। अति चंचलतावश बार-बार उल्लम्फनकारी अश्व गंगा तट पर तरंगों का भ्रम उत्पन्न करने लगे। गंगा जल में प्रवेश किए हुए हस्ती, भैंस, ऊँट उस श्रेष्ठ सरिता को जैसे

चारों ओर से नवीन जाति के मत्स्य समाकुल कर डाला। अपने तटपर अवस्थित राजा के प्रति अनुकूल भाव व्यक्त करने के लिए गंगा नदी स्वतरंगों के जल-कणों से उनके सैनिकों की श्रान्ति शीघ्र दूर करने लगी। महाराज भरत की सेना द्वारा सेवित गंगा नदी शत्रुओं की कीर्त्ति की भाँति क्षीण होने लगी। भागीरथी के तट पर अवस्थित देवदारु वृक्ष बिना परिश्रम के हस्तियों के बन्धन स्थल बन गए।

महावत हस्तियों के लिए पीपल, सल्लकी, कर्णिकार और उदुंबर के पत्तों को कुल्हाड़ी से काटते थे। ऊर्द्धीकृत कर्णपल्लव से पंक्तिबद्ध अश्व मानों तोरण निर्माण कर रहे हों ऐसे शोभित हो रहे थे। अश्वपाल भ्राता की तरह मूँग, मोठ, चने, जौ आदि घोड़ों के सम्मुख रखते थे। महाराज के स्कन्धावार में अयोध्या नगरी की ही भाँति अल्प समय में ही तिराहे, चौराहे और दुकानों की पंक्तियाँ बन गईं थीं। एकान्त में बड़े और मोटे कपड़ों के तम्बुओं में रहते समय सैनिकों को अपने गृह भी याद नहीं आते। खेजड़ी, बेर और कैर वृक्षों की तरह काँटे भरे वृक्षों के पत्ते भक्षणकारी ऊँट सैनिकों के काँटे चुनने का कार्य करते। प्रभु के सम्मुख नौकर की तरह खच्चर गंगा के बालुकामय तट पर अपनी चाल चलते और लोट-पोट हो जाते। कोई काठ लाता तो कोई नदी से जल, कोई तृण लाता तो कोई साग-सब्जियाँ और फल। कोई चूल्हा तैयार करता तो कोई शालि धान कूटता, कोई अग्नि प्रज्ज्वलित करता। कोई चावल बनाता तो कोई घर की भाँति एक ओर निर्मल जल से स्नान करता। कोई सुगन्धित धूप से निज को सुगन्धित करता, कोई पैदल सेना को पहले खिलाकर स्वयं बाद में आराम से भोजन करता। कोई पत्नी सहित अपने अंग में विलेपण करता। चक्रवर्ती की छावनी में सभी वस्तुएँ सहज उपलब्ध थीं। अतः कोई भी ऐसा नहीं सोचता कि वह सेना में सम्मिलित हुआ है।

भरत ने वहाँ एक दिन और एक रात्रि रह कर प्रस्थान किया। उस दिन भी एक योजन गमनकारी चक्र के पीछे एक योजन पथ अतिक्रम किया। इस प्रकार सदैव एक योजन चलते हुए चक्र के पीछे-पीछे भरत मगध तीर्थ पर आए। वहाँ पूर्व समुद्र के तट पर छावनी डाली। वह स्थान बारह योजन दीर्घ और नौ योजन चौड़ा था। वर्द्धकी रत्न ने वहाँ सैनिकों के लिए आवास निर्मित किए। धर्मरूप हस्ती को शालारूप पौषध शालाएँ भी बनाईं। सिंह जैसे पर्वत से उतरता है उसी प्रकार महाराज भरत पौषध शाला में रहने की इच्छा से हस्ती पृष्ठ से नीचे उतरे।

संयम रूपी साम्राज्य लक्ष्मी के सिंहासन जैसा दर्भ का नवीन संथारा वहाँ बिछवाया। उन्होंने हृदय में मागध तीर्थ कुमार देव को धारण कर सिद्धि के आदि द्वार रूप अष्टम भक्त (बेला) तप किया। फिर निर्मल वस्त्र धारण कर अन्य वस्त्र पुष्प माला और विलेपनादि एवं अस्त्र-शस्त्रादि परित्याग कर पुण्य पोषण के लिए औषध तुल्य पौषधव्रत ग्रहण किया। अव्यय पद मोक्ष में जैसे सिद्धगण रहते हैं उसी प्रकार दर्भासन पर पौषधव्रती महाराज भरतने जागृत और क्रिया रहित होकर अवस्थान किया। अष्टम तप के अन्त में पौषधव्रत परिपूर्ण कर शरत्कालीन मेघ के भीतर से सूर्य जैसे बाहर निकलता है उसी प्रकार अधिक कान्तिवान भरत पौषधशाला से बाहर आए और सिद्धि प्राप्त उन्होंने स्नान कर बलि कर्म किया। कारण विधिज्ञाता पुरुष कभी विधि को नहीं भूलते।

फिर उत्तम रथी राजा भरत पवन की भाँति वेग सम्पन्न और सिंह की भाँति तेजस्वी अश्ववाहित सुन्दर रथ पर चढ़े। वह रथ चलने के समय प्रासाद की तरह लगता था। उसमें पताका समन्वित उच्च ध्वज स्तम्भ था। अस्त्रागार की तरह वह अनेक अस्त्रों से सुसज्जित था। उस रथ की चारों दिशाओं में चार घण्टे लगे थे। उसके शब्द मानों चारों ओर की विजय लक्ष्मी को पुकार रहे थे। तभी इन्द्र के सारथी मातलि की तरह राजा के मनोभावों के ज्ञाता सारथी वल्गा आकृष्ट कर अश्वों को दौड़ाया। राजा भरत द्वितीय समुद्र की भाँति समुद्र के किनारे आए। इस समुद्र में हस्तीरूप पर्वत थे। वृहद्-वृहद् शकट रूपी मकर थे। चपलगति अश्वरूपी तरंग थी। विचित्र अस्त्ररूपी भयंकर सर्प थे। पथ से उठती रज रूपी वेला भूमि थी और रथ का घर्घर समुद्र गर्जन तुल्य था। फिर मत्स्यों के शब्दों से जिसका गर्जन और बढ़ रहा है ऐसे समुद्र में चक्रवर्ती भरत ने रथ को नाभि पर्यन्त उतारा। एक हाथ धनुष के मध्य भाग में और दूसरा हाथ प्रत्यंचा पर रख उसको खींचा। धनुष का आकार पंचमी के चाँद का अनुकरणकारी बनाया एवं प्रत्यंचा को कुछ और खींच कर धनुष में टंकार दी। यह टंकार धनुर्वेद की ओंकार ध्वनि-सी लगी। उन्होंने तूणीर से अपना नामांकित एक तीर निकाला जो कि पाताल से निर्गत सर्प-सा लगा। सिंह के कर्ण की तरह उन्होंने मुष्टि में शत्रु के लिए वज्रदण्ड रूप उस तीर को पकड़ा तथा उसका पिछला हिस्सा प्रत्यंचा पर चढ़ाया। कर्ण के स्वर्णालंकार रूप मृणाल सदृश उस तीर को उन्होंने कानों तक खींचा। राजा के नखरत्न से प्रसारित किरणों में वह तीर अपने सहोदरों से घिरा हुआ हो ऐसा मालूम होता था। खिंचे हुए

धनुष के अन्तिम भाग में रहा वह चमकता तीर मृत्यु के खुले मुख में झिलमिलाती जिह्वा की लीला को धारण कर रहा था। उस धनुष के मण्डल में स्थित लोकपाल राजा भरत अपने मण्डल में अवस्थित सूर्य के समान भयंकर प्रतीत हो रहे थे।

उस समय लवण समुद्र यह सोचकर क्षुब्ध हो गया कि यह राजा या तो मुझे स्थान भ्रष्ट करेगा या दण्ड देगा। भरत चक्रवर्ती ने तब बाहर, मध्य, आगे और अन्त मे नाग कुमार, असुर कुमार एवं सुवर्ण कुमारादि देवताओं द्वारा रक्षित दूत की भाँति आज्ञा पालनकारी और दण्ड की तरह भयंकर उस तीर को मगधतीर्थाधिपति पर निक्षेप किया। डैनों की फड़फड़ाहट की तरह शब्द से आकाश को गुंजित कर वह तीर गरुड़ की भाँति खूब वेग से दौड़ा। राजा के धनुष से निक्षिप्त वह तीर इस प्रकार सुशोभित हुआ जैसे मेघ से उत्पन्न विद्युत, आकाश से गिरता तारा, अग्नि से उत्क्षिप्त स्फुलिंग, तापस से निकली तेजोलेश्या, सूर्यकान्त मणि से वहिर्गत अग्नि, इन्द्र के हस्त से निक्षिप्त वज्र शोभित होता है। मुहूर्त्त मात्र में बारह योजन समुद्र को अतिक्रम कर वह तीर मगधपति की सभा में जाकर इस प्रकार गिरा जैसे वक्ष में आकर तीर पतित होता है। मगधपति असमय में सभा के मध्य तीर को आकर गिरते देख इस प्रकार क्रुद्ध हुए जिस प्रकार लगुड़ प्रहार से घायल सर्प क्रुद्ध होता है। उनकी दोनों भृकुटि प्रत्यंचा खींचे धनुष की तरह भयंकर और गोलाकार हो गयीं। उनके नेत्र प्रदीप्त अग्नि की तरह लाल हो गए। नाक धौंकनी की तरह फूलने लगी और ओष्ठ सर्प की तरह फुफकार उठे। ललाट को आकाश के धूमकेतु की तरह रेखांकित कर सपेरा जैसे सर्प को उठाता है उसी प्रकार दाहिने हाथ से अस्त्र उठाकर बायाँ हाथ शत्रु के ललाट रूपी आसन पर पटक व विषज्वाला-सी वाणी में वे बोले :

स्वयं को वीर मानने वाले और अप्रार्थित वस्तु की प्रार्थना करने वाले किस कुबुद्धि ने मेरी सभा में तीर फेंका है? वह कौन है जो एरावत हाथी के दाँतों को तोड़कर उससे कर्ण कुण्डल बनाना चाहता है? वह कौन है जो गरुड़ के पंखों का मुकुट धारण करना चाहता है? वह कौन है जो नाग मस्तक स्थित मणि को उखाड़ना चाहता है? सूर्याश्व को हरण करने का इच्छुक वह कौन है? उसका अहंकार मैं उसी भाँति चूर-चूर करूँगा जैसे गरुड़ सर्प के प्राण लेता है। ऐसा कहकर मगधपति उठ खड़े हुए। विवर से निकलते सर्प की भाँति उन्होंने म्यान से तलवार निकाली और धूमकेतु की भ्रम सृष्टि करते हुए वे तलवार घुमाने लगे। क्रोध की अधिकता से उनका सारा परिवार

इस प्रकार उठ खड़ा हुआ जिस प्रकार हवा के वेग से समुद्र में तरंगें उठती हैं। कोई अपने पौरुष से आकाश को कृष्ण विद्युतमय तो कोई चमकते अस्त्र-शस्त्र से आकाश को अनेक चन्द्र मय करने लगा। कोई मृत्यु दन्त द्वारा निर्मित हुई हो ऐसी बरछी को चारों ओर उत्क्षिप्त करने लगा तो कोई अग्नि जिह्वा तुल्य फरसे को घुमाने लगा। किसी ने राहु की तरह भयंकर भाग्य-से मुद्गर को ग्रहण किया। कोई वज्र तीक्ष्ण त्रिशूल और यमराज के दण्ड से प्रचण्ड दण्ड को उठाने लगा। कोई शत्रु विनाश के कारण रूप स्व हाथों को ठोकने लगा तो कोई मेघनाद की तरह उच्च स्वर से सिंहनाद करने लगा। कोई 'मारो-मारो' चिल्लाने लगा तो कोई 'पकड़ो-पकड़ो' बोलने लगा। कोई 'खड़े रहो - खड़े रहो' कहने लगा तो कोई 'चलो-चलो' बोलने लगा। इस प्रकार मगधपति का समस्त परिवार कोपवश नाना प्रकार के विक्रम प्रदर्शन करने लगा। तब अमात्य ने भरत महाराज के उस तीर को उठाकर भली-भाँति देखा। उस पर मन्त्राक्षर से उदार सार सम्पन्न निम्न अक्षर लिखे थेः

सुरासुर और मनुष्यों के साक्षात् ईश्वर श्री ऋषभदेव स्वामी का पुत्र भरत चक्रवर्ती तुम्हें आदेश देता है कि यदि तुम स्वराज्य, स्वजीवन सुरक्षित रखना चाहते हो तो तुम्हारा सर्वस्व हमें देकर हमारी सेवा करो।

उस लिपि को पढ़कर मन्त्री अवधिज्ञान से विचार कर और जानकर उस तीर को मगधाधिपति को और सबको दिखाकर उच्चस्वर में बोला—हे मिथ्या साहसकारी, अर्थ बुद्धि से निज स्वामी के अहितकारी और इस प्रकार अपनी स्वामी भक्ति को प्रमाणित करने वाले राजगण, तुम्हें धिक्कार है! इस भरत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी के पुत्र भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए हैं। वे हमसे उपहार चाहते हैं और इन्द्र की भाँति प्रचण्ड शासनकारी हमलोगों को अधीन करना चाहते हैं। इस पृथ्वी पर समुद्र का शोषण किया जा सकता है, मेरु पर्वत को उखाड़ा जा सकता है, यमराज को विनष्ट किया जा सकता है, पृथ्वी को उलटाया जा सकता है, वज्र को चूर्ण किया जा सकता है, बड़वाग्नि निर्वापित की जा सकती है किन्तु चक्रवर्ती को जय नहीं किया जा सकता। इसलिए हे राजन्, अल्प बुद्धि वाले इन लोगों की उपेक्षा कर चक्रवर्ती को प्रणाम करने चलिए।

[क्रमशः

अर्द्ध कथानक

बनारसी दास

[पूर्वानुवृत्ति]

क्रमशः आगरा से महामारी चली गयी। लोग पुनः आगरा लौटने लगे। कुछ दिन पश्चात् निहालचन्द के विवाह में योग देने अमासर गया।

वहाँ से लौटने पर मैं साहू सवल सिंह के घर अक्सर जाया करता। मेरी माँ भी जौनपुर से आगरा आ गई। फिर खेराबाद विवाह करने गया। विवाह के पश्चात् पुनः आगरा लौट आया और तीर्थ यात्रा जाना तय किया। प्रख्यात् शराफ कँवर जी वर्द्धमान के नेतृत्व में एक तीर्थ यात्री दल अहिच्छत्रा और हस्तिनापुर तीर्थ जाने के लिए तैयार हो रहा था। मैं भी उसी दल में माँ और पत्नी को लेकर मिल गया। मैंने तीनों के लिए एक गाड़ी भाड़े-पर ली और शुभ दिन देखकर सुबह के समय यात्रा प्रारम्भ की। रास्ते भर मेरा हृदय एक परम भक्ति से आपूरित था और संसार से था परम वैराग्य।

पौष मास के एक शुभ क्षण में अहिच्छत्रा में हमलोगों ने भगवान पार्श्वनाथ की पूजा की। वहाँ से हम हस्तिनापुर गए और तीन तीर्थंकर शान्ति, कुन्थु और अरनाथ की पूजा की। उनके सम्मान में मैंने एक छप्पै रचा एवं भक्ति भाव से नित्य वह गाता। वह पद है—

श्री बिसेन नरेस, सूर नृप राइ सुदंसन।
अचिरा सिरिआ देवि, करहिं जिस देव प्रसंसन॥
तसु नंदन सारंग, छाग नंदावत लंछन।
चालीस पैंतिस तीस चाप काया छबि कंचन॥
सुखरासि बनारसिदास भनि, निरख मन आंनदई।
हथिनापुर, गजपुर, नागपुर, सांति कुंथ अर बंदई॥

संघ दिल्ली के पथ से लौटा। राह में मेरठ पड़ा जहाँ मेरा ननिहाल है। संघ ने किले के निकट छावनी डाली। वहाँ से शहर जाकर मैं अपने आत्मीय स्वजनों से मिला। मेरठ से हम कोएल (अलीगढ़) आए। कारण यहाँ के मन्दिर में पूजा करने को हम प्रतिज्ञाबद्ध थे। फिर वहाँ से हम आगरा आए और अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने-अपने घर लौट गए।

इस तीर्थ यात्रा के पश्चात् मैं सच्चा जैन बन गया। मैं नियमित रुप से उपाश्रय जाता और विहार - रत अल्प समय के लिए ठहरे हुए जैन

साधुओं के दर्शन वन्दन करता। उनसे साधु और गृहस्थों के चारित्र का ज्ञान प्राप्त किया और गृहस्थ चारित्र पालने में तत्पर हुआ : बारह व्रत पालन की प्रतिज्ञा की एवं उस पर कविता रची। शास्त्रोक्त आत्म संयम के चौदह नियम भी पालन करने लगा। भूल होते ही प्रायश्चित करता। प्रतिदिन सन्ध्या समय प्रतिक्रमण करता। पूर्वकृत पापों की आलोचना करता, भविष्य में भी उनसे सतर्क रहने के लिए जागरूक रहता। मेरा विश्वास भी क्रमशः जैन तत्वों में केन्द्रित होने लगा। फलतः मिथ्यात्व का पूर्णतः परित्याग कर दिया।

विक्रम संवत् १९७६ में मेरी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। मेरी धार्मिक प्रवृत्ति और बढ़ती गयी।

एक वर्ष पश्चात् मेरी माँ का देहान्त हो गया। प्रथानुसार आत्मीय स्वजनों में मैंने फल मिठाई बाँटी।

विक्रम १९७९ में मेरी पत्नी और पुत्र दोनों की मृत्यु हो गयी। उसी वर्ष फिर मेरा सम्बन्ध हुआ। इस बार कूकड़ी गोत्रीय वेगा साहू की लड़की के साथ हुआ। उनका निवास स्थान भी खैराबाद ही था। १९८० में मैं खैराबाद गया और तीसरी बार विवाह कर आगरा लौट आया।

इस बार खैराबाद में एक विशेष मित्र प्राप्त हुआ उसका नाम था अर्थमल धोर। अर्थमल को आध्यात्मिक चर्चा अच्छी लगती थी। अध्यात्म एक नवीन धर्मीय आन्दोलन है जो आत्मा से सम्बन्धित है। अर्थमल मेरी ओर आकृष्ट हुआ एवं मुझे समयसार नाटक पढ़ने को दिया। इस पर राजमल्ल नामक एक पण्डित ने हिन्दी टीका रची थी। अर्थमल ने मुझे टीका की सहायता से मूल ग्रन्थ पढ़ने को कहा। बोला—इससे मैं सत्य को जान सकूँगा। मैं भी आग्रह पूर्वक उस पुस्तक को पढ़ने लगा। किन्तु अध्यात्म का गहन अर्थ मैं नहीं समझ सका। लेकिन इतना जरुर हुआ कि बाह्य धार्मिक क्रिया - काण्डों से मेरा विश्वास उठ गया। मैं एक आध्यात्मिक नैराज्य में जा पड़ा। कारण यद्यपि बाह्य क्रिया-काण्डों पर से मेरी श्रद्धा उठ गयी थी किन्तु मैं आत्मा को पकड़ नहीं सका। मैं आकाश और पृथ्वी के मध्य झूलने लगा और ऊँट के वायु निःसरन की भाँति हवा को दूषित करने लगा।

क्रमशः मुझ में एक परिवर्तन आने लगा। सच्चा वैराग्य मन में जमने लगा। मैं रूपातीत आत्मा की चर्चा करने लगा। उस नवीन आलोक में मैंने कई ग्रन्थ लिख डाले। उस समय जो कुछ लिखा उसकी तालिका निम्नलिखित है—

ज्ञान पच्चीसी में सच्चा ज्ञान क्या है इस पर पच्चीस कविताएँ लिखी। ध्यान बत्तीसी में ध्यान पर आलोचना की, आध्यात्मिक गीत में आत्मा की चर्चा। शिव मन्दिर एवं अन्य कुछ कविताएँ कवित्त छन्द में लिखीं।

मैंने सब प्रकार के क्रिया-काण्डों का परित्याग कर दिया। अब तक मैं जिन मन्त्रों का जाप करता, व्रत पालन करता, सामायिक प्रतिक्रमण करता उन सभी का त्याग कर दिया। हरी सब्जी नहीं खाने का जो नियम लिया था उसे भी भंग कर दिया। क्योंकि मुझे सभी क्रिया-काण्ड निरर्थक प्रतीत होने लगे। मैं सब कुछ से अलग हो गया। मुझे सब विजातीय लगने लगा।

उस समय की मेरी मनः स्थिति के विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है किन्तु मुझे वह प्रयोजनीय नहीं लगता। लेकिन एक बात कहे बिना नहीं रह सकता। मैंने सब प्रकार के आकारों की उपासना का परित्याग कर दिया। चारित्र का भी परित्याग कर दिया। मुझे लगा जैसे मैं दुर्विनीत और नीच होता जा रहा हूँ। इसी समय त्रिपुरदास के विवाह में बाराती बनकर सांगानेर गया। वहाँ से लौटने पर मैं जैसे और अधार्मिक हो गया। यहाँ तक कि भगवान के सम्मुख रखा चढ़ावा भी उठा कर खाने को मन प्रस्तुत हो गया।

उस समय मेरे जो तीन मित्र हुए वे भी मेरी ही तरह अधार्मिक, धर्मद्वेषी और स्थूल हँसी ठठ्ठा परायण थे। मैं उनके साथ मिलकर जो धार्मिक जीवन यापन करते उनकी अश्लील हँसी उड़ाता।

मेरे उन तीनों मित्र के नाम थे चन्द्रभान, उदयकरण और थान। वे भाँड़ों की तरह नाना प्रकार के खेल दिखाना पसन्द करते। हम जब मिलते तब एक दूसरे के माथे पर जूते के तलवे से मारते।

कभी अध्यात्म ज्ञान में ज्ञानी की तरह नेत्र करके खेल दिखाते तो कभी किसी कोठरी में घुसकर कपड़े उतारकर नाचते। बोलते हम परिग्रह त्यागी निर्ग्रन्थ मुनि बन गये हैं। हम एक दूसरे के सिर पर जूता मारकर कहते जो हमें अधार्मिक कहता है हम उसके सिर पर जूता मारते हैं। जो गीत भजन आदि प्रचलित थे उन्हें व्यंगात्मक रूप देकर गाते और उनमें अध्यात्म अर्थ खोजते।

हमारे अशुभ कर्मों का उदय हो गया था। नहीं तो ऐसा मिथ्यात्व और पागलपन कैसे कर पाता? आज मैं सोच भी नहीं सकता हूँ कि मनुष्यों के सदुपदेश की उपेक्षा कर किस प्रकार मैं लज्जास्पद अश्लील खेलों में मस्त

हो गया था। जब तक मेरे अशुभ कर्मों का उदय रहा तब तक वह सब रहा तत्पश्चात् स्वतः ही चला गया। किन्तु इसने मेरी ख्याति को कलंकित कर दिया। सारे जैन क्या यति क्या गृहस्थ सब मुझे अन्तःसारशून्य शेखचिल्ली समझने लगे। अब तक जो पण्डित विशेषण पाता रहा था वह इसी कारण कि लोग मेरे इन तीनों मित्रों के विषय में नहीं जानते थे। लोगों का मुँह बन्द भी नहीं किया जा सकता। जो घटित होता है सभी देखते हैं। फिर अपने-अपने मतानुसार निन्दा-प्रशंसा करते हैं। मनुष्य कुछ बोले बिना नहीं रह सकता। जैसा देखता है सुनता है वैसा बोलता है। लोगों का मुँह बन्द नहीं किया जा सकता।

क्रमशः मैं खेल तमाशे छोड़ने लगा किन्तु अश्रद्धा का परित्याग नहीं कर सका। तीर्थंकर मूर्त्ति को भी मैं अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगा। मैं उनके विषय में वह सब बोला जो बोलना उचित नहीं था। जैन साधु से व्रत ग्रहण किए किन्तु घर पहुँचते ही उसे इच्छापूर्वक भंग किया। रात-दिन पशु की तरह खाने लगा। सब कुछ त्याग कर महा-मिथ्यात्व में डूब गया।

सम्वत् १६८४ के आषाढ़ मास में मेरी तीसरी पत्नी के एक पुत्र हुआ। किन्तु कुछ दिनों से अधिक जीवित नहीं रहा। जीवन ऐसा ही नश्वर है। उसी वर्ष २२ वर्ष राज्य कर बादशाह जहाँगीर काश्मीर से दिल्ली आते हुए रास्ते में ही मर गया। उसकी मृत्यु के चार मास पश्चात् शाहजहाँ आगरे के सिंहासन पर बैठा और साहिब खान किरण की उपाधि धारण की।

१६८५ में मेरे एक और पुत्र जन्मा। वह भी एक वर्ष कुछ ही दिन बचा। मेरे सभी पुत्र अल्पायु थे। १६८७ में मेरे एक पुत्र और हुआ एवं १६८६ में एक लड़की। लड़की भी अधिक दिन जीवित नहीं रही। एक पुत्र को छोड़कर मेरे सभी लड़के-लड़कियाँ कुछ महीने ही जिन्दा रहे। वह लड़का भी मात्र कुछ वर्ष ही जीवित रहा वह भी मर गया। अब मैं एकदम निः-सन्तान हूँ।

इसी प्रकार समय बीतता गया किन्तु धर्म के प्रति जो मेरी अश्रद्धा थी वह नहीं गयी।

विक्रम १६८० से १६६२ की मुख्य घटनाएँ बतलायी हैं। उस समय की और भी बातें कहने की है वे अब बता रहा हूँ।

इसी बीच बच्छा के पुत्र के विवाह में चारसू गया था और उसी समय कुछ विशेष लिखा था—जैसे,

(१) सूक्ति रत्न माला—इसमें १०० पद हैं
(२) अध्यात्म बत्तीसिका—भगवद् भक्ति विषयक ३२ कविताएँ
(३) पैड़ी
(४) फागुधमाल
(५) सिन्धु चतुर्दशी
(६) शिव पच्चीसी—ध्यान पर २५ पद
(७) सहस अटोत्तर नाम—ईश्वरीय नाम
(८) करम छत्तीसी
(९) राम और रावण के पार्थक्य लेकर
(१०) आँखे दोई विधि—दो प्रकार की दृष्टि भंगी विषयक

इसके अतिरिक्त दो वचनिका, बहुत से अष्टक गीत भी रचे। इस प्रकार मैंने बहुत लिखा और लिखने में आनन्द भी मिला किन्तु जो कुछ लिखा वह अर्द्ध और आंशिक सत्य मात्र। १९९२ सम्वत् में पण्डित रूपचन्द्र आगरा आए और तिछून शाहू निर्मित मन्दिर में रहने लगे। वे जैन आगम साहित्य के अगाध पण्डित थे। हम समस्त अध्यात्मीगणों ने मिलकर उनसे अनुरोध किया कि वे गोम्मटसार की व्याख्या कर हमें सुनाएँ। गोम्मटसार गुणस्थान और सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। विभिन्न प्रकार के जीव गुण स्थान की विभिन्न पर्यायों में अवस्थान करते हैं जो कि सम्यक् प्राप्ति के विभिन्न सोपान हैं। गोम्मट सार गुणस्थान के विभिन्न सोपानों का विस्तृत विवरण देता है। इससे जाना जाता है कि अन्तर की जो वस्तु है वह ध्रुव नित्य है केवल वाह्य आकार और कर्म परिवर्तित होते हैं। विभिन्न अपेक्षा से वस्तु सत्य को किस प्रकार जाना जाता है इसका भी विचार इसमें हैं।

गोम्मटसार के अध्ययन ने मेरे जीवन को आलोकित कर दिया। मेरे समस्त अविश्वास समस्त प्रश्नों का अवसान हुआ। मेरा मानो नवीन जन्म हुआ। मैंने इतने दिनों के पश्चात् स्याद्वाद का प्रकृत अर्थ जाना।

रूपचन्द पण्डित एक सुयोग्य शिक्षक थे। उनकी शिक्षा से जैन धर्म के मूल तत्वों पर मेरी दृढ़ श्रद्धा हुई।

मैं फिर लिखने लगा। इसबार जो कुछ लिखा अध्यात्म के आलोक में लिखा। साथ ही यह भी समझ गया कि मैंने जो कुछ पहले लिखा और जो

कुछ अब लिख रहा हूँ उसमें कोई विरोध नहीं है। मेरे हृदय में तब कालिमा थी, विश्वास में अदृढ़ता थी अब वह दूर हो गयी थी। मैंने वह दृष्टि प्राप्त की जिसमें सबकुछ समभाव से देखा जाता है। सब कुछ समान, ऊँच नीच का कोई भेद भाव नहीं। भगवान साक्षी हैं, मैंने वह ज्ञान प्राप्त किया जो आत्मज्ञान के समीप है।

१८८३ विक्रमाब्द। गत वर्ष जो समयसार नाटक मेरे लिए दुर्बोध्य था अब लगा मैं उस पर काम कर सकता हूँ। मैं एक नवीन प्रेरणा और आनन्द से उसका हिन्दी अनुवाद करने लगा। ७२७ पद में मैंने उसे समाप्त किया। स्याद्वादतत्व में तब मैंने परिपक्वता प्राप्त कर ली थी।

१८८६ सम्बत् में मेरी तीसरी पत्नी से जो पुत्र हुआ था वह भी मर गया। उसकी मृत्यु ने मुझे गंभीर दुःख में निमज्जित कर दिया। वास्तव में संसार में मोह महा बलवान है जो कि ज्ञानी-अज्ञानी दोनों को ही समान भाव से बाँधता है।

मेरे पुत्र की मृत्यु को आज दो वर्ष व्यतीत हो गए हैं फिर भी मन रिक्त है। मैं उस दुःख को भूला ही नहीं पा रहा हूँ। उसकी स्मृति मुझे पीड़ित कर रही है।

मेरी आत्म कथा प्रायः सम्पूर्ण हो गयी है। अभी मेरी उम्र ५५ वर्ष की है। मैं अपनी पत्नी के साथ एक प्रकार से अभाव रहित जीवन बिताते हुए आगरा में निवास कर रहा हूँ। मैंने तीन विवाह किए। मेरे दो कन्याएँ और सात पुत्र हुए। किन्तु आज उनमें से कोई नहीं रहा। शीतकाल के वृक्ष की भाँति श्यामलता खोकर मैं और मेरी पत्नी रिक्त और शून्य हो गए हैं। तत्व दृष्टि से देखने पर कहना होगा कि जब हम वस्तु को ग्रहण करते हैं तभी तो उसका परित्याग करना पड़ता है? किन्तु, संसार में रहते हुए उस दृष्टि से हम कहाँ देख पाते हैं। जब वह ग्रहण करता है तब स्वयं को धनी समझता है जब कुछ खोता है तो रिक्त और शून्य।

मैं अपनी आत्म-कथा यहीं समाप्त करता हूँ किन्तु उसके पूर्व मेरे वर्तमान गुण और दोष बतलाता हूँ।

प्रथम गुणों को ही बतलाता हूँ :

मैं अध्यात्म विषयक पद रचना में अद्वितीय हूँ। मैं उनकी सुन्दर भाव से आवृत्ति भी कर सकता हूँ। लोग उससे प्रभावित होते हैं। मैं संस्कृत प्राकृत जानता हूँ और इनका शुद्ध उच्चारण कर सकता हूँ। मैं बहुत-सी देशी

भाषाएँ भी जानता हूँ। भाषा के प्रयोग में, शब्द और अर्थ के प्रयोग में मैं सर्वदा जागरूक हूँ।

मैं स्वभावतः क्षमाशील और सन्तोषी हूँ। सांसारिक चिन्ता में शीघ्र विचलित नहीं होता। मैं मधुरभाषी और लोग व्यवहार में निश्छल हूँ। मैं सहन करता हूँ, कटु शब्द नहीं बोलता। मैं स्थिर चित्त हूँ, अतः जो बोलता हूँ उससे दूसरों का कल्याण ही होता है। मेरा हृदय स्वच्छ और कपट रहित है। पर-स्त्री के पीछे मैं कभी नहीं दौड़ता। जैन धर्म में मेरी अगाध और सच्ची श्रद्धा है। जो संकल्प करता हूँ उसका निष्ठा के साथ पालन करता हूँ। मेरा मन शुद्ध है। मैं सदा साम्यभाव रखने की चेष्टा करता हूँ।

ये हैं मेरे गुण। इन गुणों की भी मैंने चरम उत्कर्षता प्राप्त नहीं की है। इनमें न्यूनाधिकता है।

अब बताता हूँ मेरे अवगुण :

यद्यपि मैंने बताया है कि मुझमें क्रोध, मान, कपट नहीं है फिर भी अर्थ के प्रति मेरी लालसा है। सामान्य लाभ भी जहाँ मुझे आनन्द के शिखर पर चढ़ा देता है वैसे ही सामान्य-सी क्षति भी मुझे हताशा के अन्धकार में डुबा देती है। मैं स्वभाव से ही आलसी और मन्दगति हूँ। घर से बाहर जाना ही नहीं चाहता।

मैं धार्मिक क्रिया-काण्ड नहीं करता, मन्त्रोच्चारण भी नहीं करता। न मैं तपस्या करता हूँ न आत्म-दमन, न पूजा करता हूँ, न दान देता हूँ।

मैं हँसी मजाक करना पसन्द करता हूँ। मजाक में मुझे बहुत आनन्द आता है। भाँड-सा व्यवहार करने में मुझे अच्छा लगता है। मैं बहुत-सी ऐसी बातें कहता हूँ जो निर्लज्ज हुए बिना नहीं बोला जा सकता। विभिन्न प्रकार के किस्से कहानियों का मैं उस्ताद हूँ और बना-बना के कथाएँ कहता हूँ जो पर निन्दा से भरी होती हैं। उन्हें मैं सत्य बतलाने की चेष्टा करता हूँ। मैं जब हँसी-ठट्ठे पर उतर जाता हूँ तब सत्य-असत्य का कुछ ध्यान ही नहीं रहता।

मैं जब अकेला रहता हूँ तब कभी-कभी नाचता हूँ। और कभी-कभी अन-जानी आशंका से भयभीत हो जाता हूँ।

ऐसा है मेरा स्वभाव। कभी अच्छा कभी बुरा।

मेरे विषय में जो कुछ कहना था वह प्रायः सभी कह चुका हूँ। मैंने वही कहा है जो मेरे कार्य और व्यवहार में प्रकाशित हुआ है जिन्हें लोगों ने देखा था,

जाना था। फिर भी मनुष्य के जीवन में बहुत कुछ इतना सूक्ष्म होता है जिसे न पकड़ा जा सकता है, न जाना जा सकता है। उसे तो मात्र एक ईश्वर ही जानते हैं।

मैं यह बात पुनः कहता हूँ जो मैं स्मरण कर सका वही बोल पाया हूँ। बहुत-सी ऐसी बातें जान बूझकर नहीं बताईं जिन्हें प्रमाद के वशवर्ती होकर किया एवं वह प्रमाद ऐसा है कि वह किसी को बताया नहीं जा सकता। फिर भी आप इस बात को भी स्वीकार करेंगे कि अनेक दोष और प्रमाद जो कुछ किए उन्हें छिपाने की चेष्टा भी नहीं की। साधारणतः मनुष्य अपने सामान्य दोषों को भी छिपाने की चेष्टा करता है वहाँ मैंने तो अपने सम्बन्ध में ऐसी बहुत-सी बातें बतायी हैं जो अस्वाभाविक लगती है। सम्पूर्ण जो बोल सकते हैं वे तो केवली होते हैं।

जो कुछ घटता है उसे सूक्ष्म रूप से बोलने में लगता है सर्वज्ञ केवली भी असमर्थ हैं। मात्र एक दिन में चेतना की कितनी अवस्थाओं से मनुष्य को गुजरना पड़ता है वह सर्वज्ञ ही जान सकते हैं। किन्तु वे भी उसका पूर्ण विवरण नहीं दे सकते। केवली से अधिक तो जान ही कौन सकता है? ज्ञानी तपस्वी भी, केवली जितना जानते हैं, उसका सामान्य ही जानते हैं! उनकी तुलना में मैं तो कोई सूक्ष्म कीट हूँ। तब मैं कैसे सारा बता सकता हूँ? मनुष्य जीवन में बहुत कुछ इतना सूक्ष्म है जिन्हें जाना समझा नहीं जा सकता। मैंने जो कुछ कहा है मेरे बाह्य जीवन और व्यवहार की बात ही कही है।

मैंने अपने जीवन के ५५ वर्षों की बातें कही। मनुष्य का पूर्ण आयु ११० वर्ष का है। मैंने उसका आधा जीवन जीया है। भविष्य में क्या होगा पता नहीं। वह तो एक मात्र ईश्वर ही जान सकता है।

समस्त समय के समस्त मनुष्यों को तीन भागों में बाँटा जाता है उत्तम, मध्यम और अधम।

वे उत्तम हैं जो दूसरों के गुणों को ही प्रकट करते हैं अवगुणों को छिपा देते हैं। ऐसे लोग जब अपनी बात कहते हैं तब वे स्वयं के अवगुणों को ही बताएँगे गुणों को नहीं।

जो अधम हैं वे इससे विपरीत हैं। वे हमेशा दूसरों के अवगुणों को ही बताएँगे गुणों को नहीं और अपने गुणों को प्रकट करेंगे, अवगुणों की एक बात भी नहीं बताएँगे।

मैं मध्यम हूँ अतः निश्छल रूप से अपना और दूसरों का गुण, अवगुण दोनों बताऊँगा।

आज सोमवार है। विक्रम सम्वत् १६६८ की अग्रहन मास की सुदी पंचमी। आज अपनी जीवन कथा शेष की है। मैं अभी आगरे में रहता हूँ। मैं फिर से कहता हूँ—मैं जैन श्रीमाल वंशीय बनारसी विहोलिया हूँ। मैं अध्यात्म विश्वासी हूँ। न जाने क्यों मेरे मन में आया मैं अपनी जीवन कथा सबको बताऊँ। अतः मेरे जीवन के ५५ वर्षों में जो-जो घटा वह विवृत किया। भविष्य की बात मुझे मालूम नहीं। जो-जो आएगा उसके सम्मुखीन होना होगा।

गत ५५ वर्षों की कथा मैंने लिखी है जो कि पूर्ण जीवन का आधा है अतः मैंने इसका नाम रखा है अर्द्ध कथानक।

जो दुष्ट हैं वे इस कथा को पढ़कर हँसेंगे, किन्तु जो मित्र हैं वे इसे पढ़कर आनन्द पाएँगे और परस्पर एक दूसरे को सुनाएँगे।

शेष करने के पूर्व मैं उन सबको मेरी शुभकामनाएँ देता हूँ जो इसे पढ़ेंगे सुनेंगे सुनाएँगे। इस ग्रन्थ में ६७५ पद हैं। वे सभी प्रायः दोहे और चौपाई छन्द में लिखे गए हैं।

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अनेकान्त || जनवरी-मार्च १९८३

इस अंक में है 'जैन धर्म का प्राचीनत्व' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'महाकवि रइधूकृत रिट्ठणेमिचरिउ में सोनागिरि की भट्टारकीय गद्दीका उल्लेख' (डा० राजाराम जैन), 'स्थानीय संग्रहालय पिछोर में संरक्षित जैन प्रतिमाएँ' (नरेश कुमार पाठक), 'ज्ञायक भाव' (बाबूलाल वक्ता), 'जैन दर्शन में सप्तभंगीवाद' (अशोक कुमार जैन), 'विश्व-शान्ति में भ० महावीर के सिद्धान्तों की उपादेयता' (पुखराज जैन), 'विवेकी विद्वानों के लिए' (महाचन्द जैन), 'विद्यानुवाद और कैंसर रोग' (वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल), 'विचारणीय प्रसंग' (पद्मचन्द्र शास्त्री), 'श्रावक की ग्यारहवीं प्रतिमा' (पद्मचन्द्र शास्त्री)।

अमर भारती || मई १९८३

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'भगवान महावीर का दिव्य सन्देश' (हेमचन्द्र जैन), 'सुदृढ़ता-सुसंस्कारिता से ही समाज टिक सकेगा' (हीराचन्द वेद), 'विद्यानिष्ठ समभावी : पण्डित बेचरदास जी' (दलसुख भाई मालवाणिया)।

कथालोक || मई १९८३

इस अंक में है 'जैनत्व का गौरव और हम' (हर्षचन्द्र), 'प्रतिष्ठा का प्रतिविम्ब' (सुभद्र मुनि), 'अभयदान' (लालचन्द जैन), 'नील घोड़े' (गणेश ललवानी)।

कुशल निर्देश || मई १९८३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघन जी महाराज का पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'प्रीति अनादिनी विष भरी' (साध्वी श्री मणिप्रभा श्री), 'हमारी सामाजिक व धार्मिक एकता का स्वरुप व उसके उपाय' (स्व० अगरचन्द नाहटा), 'दादा गुरुओं की निष्काम भक्ति : एक निदर्शन' (राजकुमारी बेगानी), 'भारतीय संस्कृति में श्रीमद् देवचन्द्र जी का योगदान' (विजय मुनि शास्त्री)।

जिनवाणी || मई १९८३

आचार्य श्री हस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन धर्म

का मनोवैज्ञानिक पक्ष' (शान्ता जैन), 'Jinism : A New Approach to Jain Philosophy' (Sushama Garg).

जैन जर्नल ।। अप्रैल १९८३

इस अंक में है 'A Short Life Sketch of Pravartini Sri Vicaksana Sri', 'Is There a Popular Jainism ?' (Arvind Sharma), 'Sankara and Kunda Kunda' (Bhagwant Singh), 'Jaina Teacher, in Humble Garb' (Leona Smith Kremser), 'Some Unpublished Jaina Images of Bihar' (Ajoy Kumar Sinha), 'Doctrines of An Obsolete Sect' (Pranabanand Jash), 'The Jaina Background of 24 Parganas' (Gouri Shankar De).

जैन सिद्धान्त भास्कर/Jaina Antiquary ।। दिसम्बर १९८२

इस अंक में है 'श्रीमद् भट्टालंकार देव' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'श्रीमद् भागवत् गीता एवं जैन धर्म में अहिंसा का स्वरूप' (डा० रामजी राय), 'आचार्य समन्तभद्र का सापेक्ष-निरपेक्ष सिद्धान्त' (डा० बृज किशन पाण्डेय), 'आचार्य नरचन्द्र सूरि रचित पाँच ज्योतिष ग्रन्थ' (स्व० अगरचंद नाहटा), 'सिंह स्तम्भ शीर्ष खण्ड क्या बौद्ध सम्प्रदाय से सम्बन्धित है ?' (गणेश प्रसाद जैन), 'कृष्णावतार में कृष्ण द्वारा इन्द्रोत्सव का विरोध' (सुबोध कुमार जैन), 'जैन सिद्धान्त भवन में द्रव्य संग्रह की पाण्डुलिपियाँ' (ऋषभचन्द्र जैन फौजदार), 'Jainism and the Jains on the Eve of Muslim Invation' (Dr. Jyoti Prasad Jain), 'A Note on Gommata, Gommataraya and Gommatadeva' (Dr. B. K. Khadabadi), 'Existence of Jainism in Eastern U. P. during Gupta Period' (Dr. Binod Kumar Tiwari), 'Vegetarianism and Lord Mahavira', 'Jaina Authors and their Works' (Dr. Jyoti Prasad Jain).

तीर्थंकर ।। अप्रैल १९८३

।। जैन ध्यान/जैन योग विशेषांक ।।

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'मुक्ति-साधकः धर्म/शुक्ल ध्यान' (डा० पन्नालाल साहित्याचार्य), 'शुभ्रता की ओर तेज कदम : शुक्ल ध्यान' (पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री), 'योग/अयोग : एक अनुशीलन' (कैलाश चन्द्र

बाढ़दार), 'परम आनन्द का स्रोत : परमानन्द स्तोत्र' (गद्यान्तर : एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्द), 'ध्यान : स्वरूप, विधि ; फल' (कन्हैयालाल सरावगी), 'समत्व योग' (अर्हद्दास दिगे), 'बात चीत' १-५ (एलाचार्य मुनि विद्यानन्द/डा० नेमीचन्द जैन), ६ (मुनि सुमन्त भद्र/डा० नेमीचन्द जैन), ७ (क्षुल्लक धर्मानन्द/डा० नेमीचन्द जैन), ८ (पं० बाहुबली उपाध्ये शास्त्री/डा० नेमीचन्द जैन), 'इन्द्रियजय : आसनजय : मृत्युंजय' (डा० नेमीचन्द जैन), 'पिण्डस्थ ध्यान : स्वरूप विवेचन' (पं० नाथूलाल शास्त्री), 'ध्यान शब्द कोश : स्वरुप विवेचन' (पं० नाथूलाल शास्त्री), 'पढ़ें : जब कभी ; आगे और इतना और' ।

तीर्थंकर ।। मई १९८३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'पुण्य श्लोक पण्डित जी (१)' (मृदुला महेता), 'अर्द्ध कथानक—सम्पूर्ण कथानक' (बनारसीदास गद्यान्तर : राजकुमारी बेगानी), 'अन्तिम पृष्ठ : चिन्तन के रूप में खत (८), (गणेश ललवानी) ।

श्रमण ।। मई १९८३

इस अंक में है 'जैन भौगोलिक स्थानों की पहचान' (डा० प्रेम सुमन जैन), 'जैन दर्शन में अजीव तत्व का स्थान और स्वरूप' (डा० विनोद कुमार तिवारी), 'जैन विद्या के अध्ययन एवं संशोधन केन्द्रों की स्थापना ; कुछ विचारणीय प्रश्न (के. रिषभ चन्द्र), 'चरित्र निर्माण में जैन आचार पद्धति का योगदान' (राजदेव दूबे) ।

जैन भवन प्रकाशन

हिन्दी

१. अतिमुक्त (२य संस्करण)— श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी ८.००

२. श्रमण संस्कृति की कविता—श्री गणेश ललवानी
अनु : श्रीमती राजकुमारी बेगानी ३.००

३. चिदानन्द ग्रन्थावली—श्री केशरीचन्द धूपिया ५.००

४. भगवान महावीर (एलबम्) १०.००

५. भगवान महावीर : जीवन व उपदेश ,५०

बांग्ला

१. सातटी जैन तीर्थ —श्रीगणेश लालओयानी ३.००
२. अतिमुक्त —श्रीगणेश लालओयानी ४.००
३. श्रमण संस्कृतिर कविता —श्रीगणेश लालओयानी ३.००
४. भगवान महावीर ओ जैन धर्म —श्रीपूरणचाँद श्यामसुखा २.००

English

1. Bhagavati Sutra (Text with English Translation)
—Sri K. C. Lalwani
Vol. I (Satak 1-2) 40.00
Vol. II (Satak 3-6) 40.00
Vol. III (Satak 7-8) 50.00

2. The Temples of Satrunjaya
—James Burgess 50.00

3. Essence of Jainism—Sri P. C. Samsukha
tr. by Sri Ganesh Lalwani 1.50

4. Thus Sayeth Our Lord—Sri Ganesh Lalwani 1.50

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट : कलकत्ता-७००००७

Vol. VII No. 2 : Titthayara . June 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700 001